Vol III Issue VII Jan 2014

Impact Factor : 1. 9508(UIF)

ISSN No :2231-5063

International Multidisciplinary Research Journal

Golden Research Thoughts

Chief Editor
Dr.Tukaram Narayan Shinde

Publisher
Mrs.Laxmi Ashok Yakkaldevi

Associate Editor
Dr.Rajani Dalvi

Honorary
Mr.Ashok Yakkaldevi

IMPACT FACTOR : 1. 9508(UIF)

Welcome to GRT

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2231-5063**

Golden Research Thoughts Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial board.Readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

International Advisory Board

Flávio de São Pedro Filho
Federal University of Rondonia, Brazil

Kamani Perera
Regional Center For Strategic Studies, Sri Lanka

Janaki Sinnasamy
Librarian, University of Malaya

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

Titus PopPhD, Partium Christian University, Oradea,Romania

Mohammad Hailat
Dept. of Mathematical Sciences, University of South Carolina Aiken

Abdullah Sabbagh
Engineering Studies, Sydney

Catalina Neculai
University of Coventry, UK

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Fabricio Moraes de Almeida
Federal University of Rondonia, Brazil

George - Calin SERITAN
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences Al. I. Cuza University, Iasi

Hasan Baktir
English Language and Literature Department, Kayseri

Ghayoor Abbas Chotana
Dept of Chemistry, Lahore University of Management Sciences[PK]

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Horia Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest,Romania

Ilie Pintea,
Spiru Haret University, Romania

Xiaohua Yang
PhD, USA

.....More

Editorial Board

Pratap Vyamktrao Naikwade
ASP College Devrukh,Ratnagiri,MS India

R. R. Patil
Head Geology Department Solapur University,Solapur

Rama Bhosale
Prin. and Jt. Director Higher Education, Panvel

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University,Kolhapur

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Chakane Sanjay Dnyaneshwar
Arts, Science & Commerce College, Indapur, Pune

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary,Play India Play,Meerut(U.P.)

Iresh Swami
Ex - VC. Solapur University, Solapur

N.S. Dhaygude
Ex. Prin. Dayanand College, Solapur

Narendra Kadu
Jt. Director Higher Education, Pune

K. M. Bhandarkar
Praful Patel College of Education, Gondia

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

G. P. Patankar
S. D. M. Degree College, Honavar, Karnataka

Maj. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

S.Parvathi Devi
Ph.D.-University of Allahabad

Sonal Singh,
Vikram University, Ujjain

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

R. R. Yalikar
Director Managment Institute, Solapur

Umesh Rajderkar
Head Humanities & Social Science YCMOU,Nashik

S. R. Pandya
Head Education Dept. Mumbai University, Mumbai

Alka Darshan Shrivastava
Shaskiya Snatkottar Mahavidyalaya, Dhar

Rahul Shriram Sudke
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore

S.KANNAN
Annamalai University,TN

Satish Kumar Kalhotra
Maulana Azad National Urdu University

Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India
Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.aygrt.isrj.net

Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 1.9508(UIF)
Volume-3 | Issue-7 | Jan-2014
Available online at www.aygrt.isrj.net

GRT

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति और पुरातत्वशास्त्र संगीतशास्त्र का
प्राचीन इतिहास और कच्छ के संगीत

[1]CHANDRIKASINH SOMVANSHI AND [2]JASWANTKUMAR PREMJI BHAI CHAUDHRI

[1]M.A.(4th Subjects), Ph.D., M.R.P./ M.R.P. (U.G.C)
Teacher Feloowhip in History.National Fellowship for D. Liit, Degree Spondored By Ministry of H.R.D., New Delhi.
[2]Deptt : of History , Lunawada, (Gujarat).

सारांश :-संगीत की उत्पति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्मा द्वारा हुई। ब्रह्मा ने यह कला शिव को प्रदान की और शिवजी के द्वारा सरस्वती को प्राप्त हुई। माँ सरस्वती को इसीलिए बीणा.पुस्तक.धारिणी कहा गया है। साहित्य की देवी माँ सरस्वती ही है। महामुनि नारद को संगीत का ज्ञान इन्हीं सरस्वती से ही हुआ था। संगीत की शिक्षा नारद ने स्वर्ग के गन्दर्भ, किन्नर तथा अप्सराओं को प्रदान की। संगीत कला के प्रचार हेतु, भरत, नारद व हनुमान तथा ऋषि आदि संगीत में पारंगत होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। नारद के अनेक वर्षो तक योग साधना करने के बाद तब शिव ने खुश होकर संगीत कला उन्हें प्रदान की। पार्वती की शयन मुद्रा को देखकर शिव ने अनेक अंग.प्रत्यगों के आधार पर रूद्र बीणा का निर्माण किया। शिव ने अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पति की। छठा राग पार्वती के मुख से मुखरित हुआ।

प्रस्तावना :

पार्वती के ही द्वारा कौशिक राग की उत्पति हुई। शिव के पूर्व.पश्चिम, उत्तर.दक्षिण और आकाशोन्मुख होने से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक की बेणु और ब्रह्मा का करताल संगीत बादों में प्रसिध्द है। "संगती.दर्पण" के लेखक श्री दामोदर पण्डित सन् 1625 ई. में हुए थे, के मतानुसार संगीत की उत्पति ब्रह्मा जी से हुई है।

मोर से षड़ज, चातक पक्षी से ऋटषभ, वकेर बटेर से गांधोर, कौये (कौआ) पक्षी से मध्यम, कोयल पक्षी से पन्चम, मेढक से धैवत तथा हाथी नामक जानवर से निषाद स्वर की उत्पति हुई। फारसी के एक विद्वान का मत है कि हजरत मूसा जब पहाड़ों पर घूम.घूमकर वहाँ की छठा देख रहे थे, ठीक उसी वक्त ग्रैव से एक आवाज आयी अर्थात आकाशवाणी हुई कि 'या मूसा हक्रीकी तू अपना असा अर्थात एक तरह का डन्डा जो कि ज्यादातर फकीरों के पास होता है, इस पत्थर पर मार।' यह आवाज सुनकर मूसा ने अपना डन्डा जोर से उस पत्थर पर दे मारा, उसी वक्त उस पत्थर के सात टुकड़े हो गये और प्रत्येक टुकड़े में पानी की धारा अलग-अलग बहने लगी। उसी जलधारा की आवाज से अस्सलाम लेक, हजरत मूसा ने सात स्वरों की रचना की। जिन्हें हम संगीतशास्त्र के इतिहास में 'सा','रे','गा','म','प','ध','नि' कहते हैं।

प्राचीन भारतीय संगीत के काल को हम चार भागों में बाँट सकते है :

(1) अति प्राचीन काल अर्थात् बैदिक काल (200 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक)
(2) प्राचीन काल अर्थात् बैदिक काल की समाप्ति के बाद (1000 ईसा पूर्व से 800 ई. सन् तक)
(3) मध्यकाल अर्थात् मुस्लिम काल (800 ई. सन् से लेकर 1800 ई. सन् तक)
(4) आधुनिक काल (1800 ई. सन् लेकर वर्तमान काल)

बैदिक काल में खासकर 'ऋग्वेद' में 'मृदंग', 'बीणा', 'वंशी', 'डमरू' आदि पाँच यन्त्रो का उल्लेख मिलता है। वैसे देखा जाय तो 'सामवेद' संगतीमय ही है। बैदिक काल में ही संगीत के साथ ही साथ नृत्यकला का भी विकाश हुआ। 'हरिवंशपुराण' के अनुसार सप्त स्वरों, ग्राम रागों, मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य, मेनका, मिश्रकेवी, तिलोतमा, उर्वशी, हेमा, रम्भा तथा संगीत के तमाम बाद्यों का वर्णन मिलता है। ईसा मसीह के जन्म से 563 वर्ष बाद भगवान् बुध्द का जन्म हुआ था। इस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया। भगवान बुध्द के सिध्दांतों को गीत-संगीत की कडियों में पिरोकर, उनका सुन्दर ढंग से गायानकर, गाँव-गाँव व नगर-नगर की सोई हुई जनता को जगाया गया। प्रसिध्द बीण वादक कौशाम्बी नरेश पाण्डववंशी सोमवंशी महाराज उदयन ने भी छठीं शताब्दी में महात्मा गौतम बुध्द की एक मूर्ति (प्रतिमा) बनवायी थी। जिसका जिक्र चीनी यात्री हवेनसाँग ने भारत यात्रा विवरण के दौरान देखाव सुना भी था। वह स्वंय गौतम बुध्द के उपदेशों का वर्णन करता है। लेखक डॉ. (प्रो.) सोमवंशी चन्द्रिकासिंह, रिसर्च स्कॉलर के अनुसार "बुध्दधर्म और जैनधर्म से काफी प्रभावित

होकर दक्षिण कोसल व उड़ीसा के सोमवंशी पाण्डववंशी राजाओं ने अपन-अपने मन्दिरों में संगीतमय होकर भगवान् विष्णु की पूजा की थी। सिरपुर के 'लक्ष्मण मन्दिर' में भगवान् विष्णु की शेषाधारी मूर्ति विद्यमान् है इस मन्दिर को पाण्डुवशी सोमवंशी राजा ने बनवाया था, जहाँ भजन-कीर्तन से पूरा आकाश मण्डल गूँज उठता था। सोमवंशी काल में बना 'लिंगराज़ा मन्दिर' उड़ीसा का, उसमें संगीत की लहरें हमेशा गूँजा करती थीं। बैदिक काल में बीणा पर ही गायन होता था। शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण जवानी अर्थात् यौवान अवस्था में था। संगीत पर जो बासना की 'धुंध' छाई हुई थी, वह अब नष्ट हो चुकी थी। 'धुन्ध' पर किसी कवि ने ठीक ही लिखा है :

"भ्रम में न रहो रात, सुबह फिर हो गी ही।'
भूलो मत मेरे दिन, रात तो फिर होगी ही।
इतराओं मत मेरे शोक, 'आनन्द' फिर जागेगा ही।।"

महाकवि कालीदास (चार सौ ईसवीं) द्वारा संगीत और कविता का प्रचार चारों तरफ हो चुका था। रामायण काल के संगीत का युग 400 ईसा पूर्व से 200 ईसवीं तक माना जाता है। महाभारत काल के संगीत का समय 500 ईसा पूर्व से लेकर 200 ईसवी तक माना जाता है। महापण्डित लंकेश्वराधिपति दशानन (दसग्रीव) रावण भी संगीतशास्त्र का प्रकांड विद्वान था। रामायण में हमें 'भेरी', 'दुन्दभी', 'मृदंग', 'धट, डिंडिम', 'मददुक', 'आदम्बर' और 'बीणा' आदि का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकी ऋषि ने ईसा पूर्व 400 वर्ष पहले 'रामायण' को लिखा था। महाभारत काल में श्रीकृष्ण संगीतशास्त्र के महान् पण्डित बताये गये हैं। पौराणिक काल में महिलाएँ नाँचने-गाने में माहिर थीं। श्रीकृष्ण की वंशी बादक में मशहूर थे। बिराट राजा के यहाँ 'बृहन्नला' नाम रखकर उनकी पुली 'उत्तरा' को संगीत की शिक्षा दी थी।

अर्जुन बीणा बादन में बहुत ही निपुण था। भरतकृत 'नाटयशास्त्र' के छ' अध्यायों को समझ लीजिए कि 28 से 33 तक में संगीतशास्त्र की तरगें भरी पड़ी है। यह शायद चौथी शताब्दी में हुए थे। 8वीं शताब्दी के मतंग मुनि प्रणीत 'बृहदेशी' नामक ग्रन्थ संगीत के देशी रागों से भरा पड़ा है। 7वीं शताब्दी के आस-पास में हुए नारद ने 'नारदीप शिक्षा' नामक ग्रन्थ संगीत से ओत-प्रोत था। यह देवऋषि नारद नहीं थे। इन्होंने सात ग्राम रागों का वर्णन किया।

(1) षाडव (2) पन्चम (3) मध्यम (4) षडज्-ग्राम
(5) साधारित् (6) कौशिक मध्यम (7) मध्यम-ग्राम

साँतवी व आठवीं शताब्दी में दक्षिणी भारत में भक्ति आन्दोलन के जोर पकड़ने पर तो संगीतशास्त्र के इतिहास में चार-चाँद लग गया था। जगह-जगह पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन होने लगा। सम्पूर्ण जन-मानस संगीतशास्त्र की लय में डूब गया। भारत का यही ही एक ऐसा समय था जब संगीतशास्त्र की नादों से आकाश कोना-कोना गूँज उठा। नारद ने दूसरा ग्रन्थ आठवी शताब्दी में 'संगीत-मरकन्द' लिखा। इस ग्रन्थ में 20 पुरूष शण, 24स्त्री राग, और 13 नपुसक राग गिनाए गये हैं। आइये अब हम भारत के प्रसिध्द गायकों के पाँच संगीत घरानों की चर्चा कर रहे है जो निम्नलिखित हैं।

(1) ग्वालियर घराना।
(2) जयपुर घराना।
(3) किराना घराना।
(4) आगरा घराना।
(5) दिल्ली घराना।

ग्वालियर घराने के जन्मदाता प्रसिध्द संगीतमय हद्दूखाँ- हब्बूखाँ के दादा स्वर्गीय नत्थन पीरबख्शजी थे। जिनकी वंशावली संख्या एक हम रिसर्च पेपर के अन्त में दे रहे हैं।

आगरा - घराना : अलखदास- मूलकदास से इस घराने की उत्पत्ति बतायी जाती है, किन्तु वास्तव में तो इस घराने के प्रवर्तक हाजी- सुजान (अकबर के दरबारी कवि तानसेन के दामाद) हैं। आगे चलकर खुदाबख्श 'धग्गे' द्वारा इस घराने का प्रचार प्रसार हुआ। आगरा घराने में उस्ताद फैयाज खाँ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनी है, जिनकी वंशावली संख्या दो हम रिसर्च पेपर के अन्त में दे रहे है।

मुसलमानों का आगमन भारत में 11वीं शताब्दी में हुआ। भारतीय संगीतशास्त्र उस समय संस्कृत भाषा में होने के कारण मुसलमान उसे समझने में असमर्थ थे। नये- नये रागों का अविष्यकार हुआ और तरह- तरह के नवीन बाद्य बने। इसके बाद 21वीं शताब्दी में संगीत की दशा विशेष अच्छी न रही, क्योंकि इस काल में मुहम्मद गौरी, महम्मूद गजनबी और मुस्लिमों द्वारा हिन्दू राजा- महाराजाओं से युध्द होता रहा। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'गीत- गोबिन्द' नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना कवि जयदेव ने की। शाङगदेवने 'संगीत रत्नाकर' की रचना 1210 ई. सन् से 1246 ई. में की। इस ग्रन्थ में कुल 264 रागों का वर्णन किया गया । इसके बाद सन् 1300 से 1800 ई. तक संगीत के विकाश का काल आया। सन् 1216 ई. से 1296 ई. के बीच संगीत की काफी उन्नति हुई। अमीर खुसरो के समय में गजल, कव्वाली, तराना, खमाशा तथा ख्याल की रचना हुई। यही खयाल आगे चलकर 'खयाल भैरवी' के नाम पर प्रसिध्द हुई। 14वीं शताब्दी में लोचन ने 'राग–तरगिजी' की रचना कीं। 1456 ई. से 1457 ई. के लगभग विजयनगर के राजा के दरबार में संगीत के प्रसिध्द पण्डित श्री मल्लिनाथ ने 'रत्नाकर' की रचना की। 15वीं शताब्दी में (1458 ई. से 1499 ई.) में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की संगीतकला का माना जाना विद्वान था।

इन्होंने 'खयाल नायिका' यानि 'कलावती खयाल' की रचना की। 'सिन्धु–भैरवी–राग' का अविष्यकार इन्होंनक ही किया। इसी

समय में भक्ति आन्दोलन ने अपनी बुलन्दी की ऊँचाईयों को छुआ, विशेषकर उत्तरी–भारत में। 1485 ई. से 1563 ई. के बीच यह सब हुआ। भजन–कीर्तन की मण्डलियाँ जगह–जगह घूम–घूमकर संगीत के माध्यम से भगवान का गुण–गान करने लगी। ठीक इस समय बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु का संकीर्तन भी खूब जारों पर था। रामामात्य के द्वारा 'स्वरेमल कलानिधि' नामक ग्रन्थ लगभग 1550 ई. कर्नाटक संगीत के रूप में रचा गया। इसमें बीस ठाठों के अर्न्तगत तिरसठ अन्य रागों का उल्लेख मिलता है।

16वीं शताब्दी यानि 1556 ई. से 1605 ई. में अकबर मुगल बादशाह का समय आता है। अकबर स्वयं कला के संगीत का बड़ा पुजारी था। इसके राजदरबार में 36 संगीततज्ञ थे। जिनमें तानसेन, बैजू–बावरा, रामदास और तानरंग खाँ प्रमुख थे। प्रसिध्द संगीतश्र महात्मा स्वामी हरिदास वृन्दावन के निवासी थे। और मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे। ग्वालियर के नरेश श्री मानसिंह तोमर का प्रसिध्द घराना 'ग्वालियर संगीत घराने' के नाम से प्रसिध्द हुआ। इस घराने के जन्मदाता नत्थन पीरबख्श थे। विक्रम – सम्वत अर्थात 16वीं शताब्दी में संगीत और भक्ति काव्य के कबीरदास (जन्म सं. 1456 और मृत्यु 1575), सूरदास (जन्म सं. 1535 और मृत्यु विक्रम सं. 1640), तुलसीदास (जन्म सम्वत 1554 और मृत्यु विक्रम सं. 1680), और कवियित्री मीरा (जन्म सं. 1560 और मृत्यु विक्रम 1630) आदि ने अपनी भक्ति–भावना से संगीत के रंगमन्च को बुलन्दी पर पहुँच दिया था। सूरदास का गीत काव्य 'सूरसागर' और गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरित्रमानस' को कौन नहीं जानता। हिन्दु–मुस्लिम एकता के प्रतीक कबीरदास सुप्रसिध्द कवियित्री और भजन गायिका मीरबाई को कौन नहीं जानता। इन सभी कवियों का समय ईसवी सन् की दृष्टि से 14वीं शदी से 16वीं शदी का मध्य माना जाता है। पण्डित पुण्डरीक पिट्ठल जी एक कर्नाटक के पण्डित थे, जिन्होंने सद्राग चन्द्रोदय, रागमाला, रागमन्जरी और नर्तन–निर्णय, नामक संगीत ग्रन्थों की रचना की।

18वीं शताब्दी में मुगल बादशाह जहाँगीर का शासन था। उसके समय में भी संगीत का काफी विकाश हुआ। जहाँगीर का समय 1605 ई. से 1627 ई. तक रहा। उसके राजदरबार में खिलासखाँ, छत्तरखाँ, खुर्रमखाँ, मक्खू, परबेजदाद आदि संगीत के प्रसिध्द गायक थे। ठीक इस समय दक्षिणी भारत के निवासी पण्डित सोमनाथजी, जो 'राजमुन्द्री' के रहने वाले थे, ने 'रागविबोध ' नामक ग्रन्थ लिखा। सन् 1625 ई. में पण्डित दामोदरजीने 'संगीत–दर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की। सरविलियम्स जोन्स की पुस्तक 'दिम्युजिक गाइडस ऑफ दि हिन्दूज' के द्वारा पता चलता है कि इस दामोदर कृत 'संगीत–दर्पण' का फारसी अनुवाद भी हो चुका है। इस ग्रन्थ का हिन्दी और गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। सन् 1660 ई. में श्री बेंकटमखी द्वारा लिखित 'चतुर्दडिप्रकाशिका' नामक ग्रन्थ भी संगीत का मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। 17वीं शताब्दी का समय अर्थात सन् 1628 ई. से 1658 ई. के बीच का समय शाहजहाँ का माना जाता है। शाहजहाँने अपने संगीतज्ञ जो उसके राजदरबार की शोभा बढ़ा रहे थे, दिरंग खाँ और लालखाँ को, चाँदी से तुलवाकर पुरस्कृत किया था अर्थात् प्रत्येक की चाँदी लगभग 4500 रूपये की बैठी थी। इसके दरबारी संगीतज्ञ रामदास महापट्टोर और जगन्नाथ भी थे। (संगीत–दर्पण का अनुवाद सन् 1650 ई. में संगीत कार्यालय, हाथरस से प्रकाशित हो चुका है। गुजराती अनुवाद श्री रतनसी लीलाधर ठक्कर द्वारा इसके पहले ही प्रकाशित हो चुका है।) औरंगजेब के समय में संगीत का काफी ह्रास (बर्बाद) हुआ। औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था, वह छत्रपति शिवाजी को पहाड़ी चूहे के नाम से पुकारता था।

उसका समय सन् 1658 ई. से सन् 1707 ई. तक था। इस बीच संगीत की बड़ी ही अवनति हुई। मुस्लिम और मुगल बादशाहों में से औरंगजब जैसा कट्टर कोई शासक नहीं था। इस शासक ने कट्टरता की हद पार कर दी थी। यह संगीत का कट्टर दुश्मन (शत्रु) था। उसने अपने समय में एक फरमान जारी कर दिया था कि उसके राज्य में यदि संगीत की आवाज सुनाई देगी, तो वह उसे शक्त से शक्त सजा देगा। उसने आदेश दिया कि संगीत के सभी 'साज–सज्जा' दफ़ना दिया जाय। सन् 1650 ई. में पण्डित उहोबल ने 'संगीत पारिजात' की रचना की। ' संगीत पारिजात' का फारसी अनुवाद सन्1728 ई. में श्री दीनानाथ द्वारा और हिन्दी अनुवाद श्री कलिंद के द्वारा सन् 1981 ई. में संगीत कार्यालय हाथरस से प्रकाशित हुआ। अपने ही राज्य और अपने ही मजहब (धर्म) के 'सिया' मुसलमानों के द्वारा मनाये जाने वाले 'शोक एवं शहीदी त्यौहार' 'त्यौहार–महोत्सव–मुहर्रम' के समय निकलने वाले तहाजिये व दुलदुल पर भी कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया था। पण्डित भाव्भट्ट ने सन् 1678 ई. से सन् 1709 ई. के बीच संगीत के तीन ग्रन्थों का निर्माण किया। हृदयनारायणदीन ने भी दो ग्रन्थ संगीत पर लिखे, 'हृदयकौतुक' और 'हृदयप्रकाश'।

18वीं शताब्दी के पूबार्ध्द अर्थात् ईसवी सन् 1729 से 1780 ई. के बीच मुगल सल्तनत के अन्तिम बादशाह मुहम्मदशाह रगींले संगीत का बहुत ही प्रेमी था। वह हरदम अपने इन्हीं संगीत के धुनों में मस्त रहता था। बस यही कारण था कि उसका नाम रंगीला पड़ गया। उसके राज–दरबार के प्रसिध्द गायक सदारंग और अदारंग थे। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध्द में संगीतकला का सुर्य धीरे–धीरे अस्त होने चला था। "अंग्रेजों का शक्तिशाली पन्जा भारत पर जमने लगा था। इस भीषण उथल–पुथल के कारण संगीत राज्याश्रयों से निकलकर छोटी–छोटी रियासतों में पनाह–पाने को विवश हो गयी।" इसी बादशाह के शासनकाल में पण्डित श्री निवास ने 'राग–तत्व–विरोध' संगीत ग्रन्थ की रचना की। ईसवीं सन् 1763 से 1768 के बीच मराठा नरेश तुलसीराव ने दो ग्रन्थ 'संगीत सरामृत' और 'राग–लक्षणम्' की रचना की। 1800 ई. के पश्चात् जिसे हमें आधुनिक काल कह सकते हैं। अंग्रजों ने भारतीय संगीत को अच्छी दृष्टि से नहीं देखी थी। संगीत अमुक–अमुक घरानों में छिप कर रह गयी। पटना (बिहार) के रईश मुहम्मद रजा ने सन् 1813 ई. सन् में 'जगराते–आसफी' नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की। जयपुर (राजस्थान) के महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने सन्1779 ई. से 1804 ई. के बीच 'संगीत–सार' नामक ग्रन्थ की रचना की। श्री कृष्णनन्द व्यास ने 'संगीत–राग–कल्पद्रुप' की रचना की। सन् 1900 से सन् 1950 ई. के बीच का काल संगीत प्रचार का आधुनिक काल माना जाता है। इस युग के संगीत रत्न पं. विष्णुनारायण भतखण्डे और पं. विष्णुदिगम्बर हैं। इन्होंने जगह–जगह घूम–घूमकर संगीतकला का उध्दार किया। जगह–जगह संगीत विद्यालयों की स्थापना भी की। 'संगीत–सम्मेलनों' का भी आयोजन किया गया। इन्हीं की असीम कृपा से लखनऊ स्थित 'मैरिस–म्यूजिक कॉलेज' जो अब 'भातखण्डे–संगीत–विद्यापीठ' के नाम से जाना जाता हैं ग्वालियर का 'माधव–संगीत–महाविद्यालय' तथा बडौदा का 'म्युजिक कॉलेज' इन्हीं की ही देन है।

राजा नवाबअलीखाँ ने 'मुआरिफन्नगमात' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ सन् 1911 ई. में लाहौर से लिखा गया। यह उर्दू भाषा में संगीत की अत्यन्त श्रेष्ठ पुस्तक है। 5 मई सन् 1901 ई. में सर्व प्रथम पं. विष्णु–दिगम्बर की कृपा से लाहोर का 'गान्धर्व–महाविद्यालय' की स्थापना हुई। 'गन्धर्व–महाविद्यालय–मण्डल' की स्थापना भी हुई। सन् 1922 ई. में श्री पलुस्करजी ने नासिक में 'रामनाम–आधार–आश्रम' खोला। प्रॉ. डी.बी. पलुस्कर जी इन्हीं के सुपुत्र थे। कुछ विद्यालयों में एम.ए. संगीत और पी.एच.डी. संगीतशास्त्र में डिग्रियाँ भी प्रदान की जाने

लगी। 'मध्य–प्रदेश और–उत्तर–प्रदेश में स्थित 'इन्द्रकला–संगीत–विश्वविद्यालय' खैरागढ़ और 'बनारस–हिन्दु–विश्वविद्यालय', बाराणसी जिसे संक्षिप्त रूप में B.H.U. भी कहते हैं। खैरागढ़ (म. प्र.) और बाराणसी (उ. प्र.) यह दो संस्थाएँ भारत में संगीतशास्त्र के लिए मानी जाती हैं और ख्याति–प्राप्त हैं। यही संगीतशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास है। डॉ (प्रो.) चन्द्रिकासिंह सोमवंशी रिसर्च स्कॉलर के मतानुसार "इतिहास का कभी भी अन्त नहीं होता, हाँ अन्धकार–मय जरूर हो जाता है। जिसे अंग्रेजी में Dark-Age (डार्क ऐज) कहते है। संगीत मुर्दे में भी जान डाल देती है यह कहावत कभी–कभी सही भी उतरती है। वर्तमान समय का संगीत कला अपने जवानी पर होकर, हठखेलियाँ खेलता हुआ मद–मस्त होकर झूम रहा हैं। वह कभी 'पोप साँग' के रूप में तो कभी 'डिस्को', डांडिया और गरबा के रूप में झूम–झूमकर अपनी लय में लहराता रहता है। यही संगीतशास्त्र का इतिहास है।"

अफ्रीका के घने बनों में रहने वाला आदिवासी जंगली ध्वनियाँ, पशु–पक्षियों की बोलियाँ आदि को जितनी सहजता से पकड़ लेता है और समझ लेता है, वह लन्दन या न्यूयार्क के निवासी के लिए सम्भव नहीं है। कच्छ में आकर इस सच्चाई को नए सिरे से जाना। जाना कि कच्छ की धरती संगीत से मुखरित है। यह सौभाग्य है कि अभी तक कच्छ यांत्रिकता के अजगर के चंगुल से बचा रहा है। इसी से कुदरत का हम दम होकर इन्सान यहाँ उसी तरह मुखरित है। प्रकृति अपने आप में संगीतमय है और कच्छ का जन–जीवन भी उसी के सुर में सुर मिलाकर गा रहा है, फलतः समूचा वातावरण ही संगीतमय हो उठता है। सुनने वाले कान चाहिए। गूंजती है फिज़ाँ यहाँ तो.....। यह है बन्नी प्रदेश जहाँ सर्वत्र घास ही घास। रम्भाती हुई गायों, कुलाँच भरते बछड़ों और पशु–पालकों के अकृत्रिम जीवन का प्रदेश बहुत ही सुन्दर है। । पशुओं के पीछे–पीछे देखभाल करके चराने वाला रक्षक, इस अनूठे वातावरण से अप्रभावित कैसे रह सकता है ? बनजे लगता है उसका अलगोजा और दूर–दूर तक हवा के पंखों पर तैर जाते है उसके स्वर। जड़ चेतन में एक समाँ बन जाता है, यह है सागर तट। मछुआरे अपने जलपोत लिए चल पड़े है। ऊपर नीला आसमान (नभ) और नीचे उज्जवल नील–फेनिल–जल। हंसनियों–से धवल पंख फैलाए समुद्र पर तैर रही है नावें। उत्ताल लहरों की टकराहट और अनवरत गर्जन, कभी सौम्य, कभी रौद्र रूप धारण करता हुआ समुद्र। और उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया है मछुआरों की। थिरकती हुई नौका के साथ उनका हृदय थिरकता है। लहरियों पर झूलती नाव के साथ उनका हृदय झूलता है, क्रोधित तरंगों की ठोकर से अस्थिर नाव के साथ ही वे चंचल हो उठते हैं और तदनुसार ही कंठ से संगीत निकल पड़ता है मांझी रे.....। कभी कोमल, कभी मधुर, कभी दर्पयुक्त। समुद्र का गर्जन शाश्वत है और उतना ही शाश्वत है संघर्ष रत मानव का हुँकार। यह अनोखी बुलन्दी है। इधर रबारी अपने पालित धन को लिए वन–प्रान्तर में चराने फिर रहा है, साँझ हो चली है, उसे लौटना है वह ऊँची टेकरी पर से आवाज करता है। एक खास अन्दाज और लय में उसकी आवाज गूँजती है। गाता हुआ वह आगे बढ़ता है, संगीत लय में मत, बढ़ता ही जाता है।

कच्छ निवासी की इस तारतम्यमय और लयात्मक स्थिति ने उसके लोक–संगती के क्षेत्र में अगुवा बना दिया है। रबरियों का घोर, मेघवालों के भजन, चारणी कीर्तन, अहीरों के गीत, जतों का अलगोजा, कृषकों–कणबियों की धुन, संधारों का सरबा, कोलियों का रास, नवरात्रि की गरबी और सबसे बढ़कर लगाओं का वाद्य–कंठ्य संगीत। मध्ययुगीन योध्दओं को जोश देने वाला सिन्धु राग। तन–बदन में आग सी प्रवाहित कर देने वाला मारू राग। नौबत और शहनाई, ढोलक और मंजीरा, तम्बूरा और करताल–नानाविध मनुष्य ने अपने को मुखरित किया है, अभिव्यक्त किया है। मानव के अनादि ध्वनिप्रेम और प्रकृति की अनन्त ध्वनि–लहरियों के बीच की संवादिता हम कच्छ की धरती पर जितनी सहजता और स्पष्टता से पा सकेंगे, वह अपने–आप में एक उपलब्धि है। कच्छ के वागड़ प्रदेश का अहीरों का एक छोटा–सा गाँव–व्रजवाणी। प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्येताओं को ज्ञात है कि अहीर उत्सव–प्रिय–प्रजा है। प्राकृत की गाथा सप्तशती जिस श्रृंगारिकर्ता, (ऐतिहासिकता) संगीतात्मकता और उत्सव प्रियता को रेखांकित करती है वह आभीरों के सामान्य जीवन का अंश है। अक्षयतृतीया, गाँव के बाहर के मैदान में ढोल पर थाप पड़ी और अहीर नारियाँ दौड़ पड़ी–उस ओर। गीत और नृत्य, ताल और स्वर, अंग–भंगिमा और पद–संचालन, यौवान और मस्ती, आत्म–विस्मरण और नाद–उपासना, उन्माद और समर्पण, भक्ति और जागतिक चेतना–एक अद्‌भुत समन्वय हो चला। अपना आपा खोकर वह बजा रहा था ढोली। यह ढोल की आवाज है मायाबी सृष्टि। यह कौन–सा जादू है जो नाचने वाली नारियों के सर पर चढ़ कर बोल रहा है। वे बेसुध है–थिरक रहे हैं पाँव, झूम रहा है शरीर, नाच रहा है मन प्रफल्लित है। यह कैसा अलौकिक दृश्य है! श्रीमद् भागवत्कार ने श्रीकृष्ण के रास के अतुल सौन्दर्य को रूपांकित किया है। इन ग्वालियों के नृत्य की ऐसी ही स्थिती है। रात ढल रही है परन्तु नृत्य में जवानी उभर रही है, यौवन हिल रहे है। गति पागलपन से प्रेरित बज रहा है ढोल; भूल गया है ढोली अपनी अस्तित्वज्ञान को और भूल गई है नर्तकियाँ अपनी देहधर्मिता को, अपने स्थूल और क्षुद्र जगत को। वे खो गई हैं अतीन्दिय विश्व में, कर गई हैं अतिक्रमण सभी भौतिक नियमों का। ताल और लय....लय औ ताल। प्रकृति के साथ समरसता का अभूतपूर्व दृश्य उमड़ रहा है।

समय बीतता गया....परन्तु नृत्य–धारा अबाध रूप से प्रवाहित होती रही, स्वर वातावरण में गूँजते रहे। द्वापर युग के विधृता–पति की तरह अहीर जन कृध्द हो उठे। जड़ और चेतन–एक लहर पर तरंगित हो रहे है। पत्नी, बहिन, बेटी, माँ कोई भी कुछ सुनती ही नहीं है। ऐसा तो क्या यह रास ? मारो इस ढोली को और फिर आहत होकर गिर पड़ा ढोली। उसके प्राण–पखेरू उड़ गए और साथ ही देहोत्सर्ग कर दिया अहीर नारीयों ने। आज भी पिछले पाँच सौ वर्षो से ब्रजवाणी की स्मृति–शिलाएँ अविश्वसनीय और अलौकिक किन्तु सत्य घटना की कथा कह रही हैं। जगत् के संगीत इतिहास में इस प्रकार सामूहिक उत्सर्ग की घटना शायद ही कहीं होगी। कच्छ ने भारतीय परम्परागत शास्त्रीय राग–रागनियों को, अपनी लोकसंगीत–परम्परा को एक साथ साधने की कोशिश की है। अनेक 'देशियों' को शास्त्र समन्वित कर दिया है। कुछ शास्त्रीय रागों को अपना बना लिया है। कच्छी संस्कृति के विद्वान अध्येय–ताओं ने ऐसे रागों की संख्या 36 मानी हैं जिन्हें साभार उध्दतकर रहा हूँ– 1. कलाणे (कल्याणी), 2. कारायलो (मोर), 3. देश (वतनी), 4. माजुरी (मोथाज), 5. कोयारी (राहदारी), 6. छरद (ओबारी), 7.बावरी (रवे), 8. आमणी, 9. राणुं (मेघ), 10. जखरो, 11. लीला, 12. कामाती, 13.मातंगी (केदारा), 14. माढवो (खंभांती), 15. सुठो (सोरठ), 16. सुणी (तोडी), 17. भलाल, 18. भरूओ (बागेश्री), 19. रमकला, 20. गधरी,21. देशी, 22. जोगी(प्रभात), 23. धनुसर (धनाश्री), 24. रांजो (कालिंगडो), 25. शामुंढा, 26. गातु, 27. शीर्कीदार, 28. भशत, 29. कीनरो, 30. मेवढो (मलार), 31. धीणोधरियो (पहाड़ी), 32. दार, 33. आशा, 34. ढोलेमारई (सिंधूडो), 35. बिभास, 36. पुरभ।इनका सुन्दर सा वर्णन डॉ. गोबर्ध्दन शर्मा और भावना मेहता ने दिया है।' सुलेमान जुमा कच्छ–मुद्रा के निवासी थे। वे पच्चासी वर्ष (85वर्ष) के ऊपर के होने पर भी नगारे बजाते थे। उनकी नौबत सुनना एक उपलब्धि थी और उन्हें नौबत बजाते देखना उससे बढ़कर विस्मय–विमुग्ध कर देने वाली घटना थी। रहीम ने एक जगह एक कल्पना की है कि भगवान शेषनाग को कान नहीं दिए। कारण कि

यदि उनके कान होते तो तानसेन की तान सुनकर वह डोलने लगता और उसकी फणि पर स्थिर पृथ्वी गिर पड़ती!

सुलेमान बापा की नौबत को लेकर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कोई भी श्रोता उससे अप्रभावित नहीं रह सकता था। सुलेमान जुमा जब नगारे बजाना शुरू करते थे, धीरे–धीरे वातावरण निर्मित होने लगता था और चरमसीमा पर हर व्यक्ति का सिर अनायास डोलने लगता था और इस बूढ़े जवान की कलाइयाँ जिस त्वरा, लाघव, और कौशल से थिरकती थीं,नगारें जैसा घोष–वाद्य नानाविध ध्वनियाँ निकलने लगता था कि दर्शक इस करिश्मे से अभिभूत हो उठाते थे। पिछले साठ वर्षो से उनकी नौबत कच्छ और देश सुन रहा था। तीन पीढ़ियों को एक साथ संगीत धारा बहाते हुए देखना–सुनना बड़ा रोमांचक अनुभव था। पितामह सुलेमान जुमा नगारे पर, उनका पुत्र शहनाई और पौत्र स्वरमंडल के साथ। एक साथ तीन पीढ़ियो को कार्यरत देखने का सौभाग्य डॉ गोवर्ध्दन शर्मा को मिला था। नगारे का जादू कच्छ के बिहड़ो, रणों, बनों, बन्नी प्रदेशो और पहाड़ियों में गर्जन के साथ गूँजती थी।

नगारा उत्तर भारत का प्रचलित वाद्य है उत्तर–प्रदेश के पूर्बी जिलों में आज भी नौटांकिया नाटयमन्च पर भी खेले जाते हैं ड्रामा के रूप में नगाडा उनमें से बाद्य में प्रमुख था। परन्तु कच्छ और पश्चिमी राजस्थान में आज भी वह लोकप्रिय है। जसनाथी सिध्दो का वृहदकाय नगारा तथा ख्वाजा चिश्ती की दरगाह में मुगल सम्राट द्वारा भेंट किया गया विशेष नगारा इतिहास प्रसिध्द हैं। आज़ादी के पूर्व तक राजस्थान–सौराष्ट्र के रजवाड़ों में अपने नौबतखाने थे। मन्दिरों में आरती के समय नगारों का निनाद घण्टे–घड़ियालों के साथ सभी जगह सुनने को मिल सकता है। युध्दों में वीरों को उत्साहित करने वाला जुझारू नगारा मात्र एक लोकवाद्य का उपयोग लोक करता रहा है। नगारा आपाद–मस्तक लोकवाद्य है। वह लोक के आवेश, आवेग, सामूहिक उल्लास को झेल सकने में समर्थ है। वह प्रशस्त जनमार्ग का यात्री है। शास्त्रीयता की संकुल, संकीर्ण और टेढ़ी–मेढ़ी गलियाँ उसके बस की नहीं हैं। पर सुलेमान जुमा के हाथों यही नगारा शास्त्रीय तालों का वाहक बन जाता था। पखावज, तबले जैसे वाद्यों से होड़ लेने लगता था। जहाँ वादक की उँगलियाँ, अँगूठे, हाथ सभी थिरकने लगते है और नानाविध बोल निकालते हैं परन्तु सुलेमान जुमा के हाथ में थे मात्र निर्जीव लकड़ी के दोडंडे। उनके डंके की चोट पड़ते ही नगारा जीवन्त हो उठता था और उद्भुत ध्वनियों को निकालता था, यह एक करिश्मा था। रामायण काल में एक कहावत है कि लंका में 'रावण का डंका' बजता था, यानि नगारा बजता था।

सुलेमान जुमा अपने वाद्य पर शास्त्रीय ताल और लोकधुनें दोनों को बजा लेते थे। वह तीन ताल, झपताल, झूमरा, द्रुपदधमार, कहरवा, दीपचंदी, दादरा, द्दपरहिया जैसी शास्त्रोक्त ताल हो अथवा मणियारी, सिंघोड़ा, हींच जैसी लोकताल हो –दोनों ही क्षेत्रों में इनकी कमाल हासिल थी। इनकी अपूर्व क्षमता को देखते हुए उन्हें 'नगारे का जादूगर' कहना सर्वथा उपयुक्त है। नगारे के जादूगर के करिश्मे के पीछे उसकी दीर्घकालीन साधना थी। चौदह वर्ष की उम्र से उन्होंने अपनी संगीत उपासना शुरू की। उनके कलागुरू थे उस्ताद उसमान; जिन्होंने इस मेधावी किशोर लय और ताल की बारीकियाँ समझाई, उसे ध्वनि के मनोमय विश्व की सैर कराई और साल भर में इस लायक बना दिया कि किशोरवय का सुलेमान कार्यक्रम देने लगे। पन्द्रह वर्ष की उम्र में सुलेमान ने जो डंके का उपयोग शुरू किया कि जीवन भर नगारावादन के क्षेत्र में एकमात्र उन्हीं का डंका बजता रहा। उस्ताद उसमान अपने जमाने के प्रख्यात कलाविद्, नगाड़ाबिद् कच्छ के तेरा गाँव निवासी भचु उस्ताद के शिष्य थे। कुछ भी हो इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उस्तादों की इस परम्परा ने हमें 'नगारे का उस्ताद' सुलेमान जुमा प्रदान किया जो अपने जीवनकाल में ही कला–किवंदनती का नायक बना।

चुने हुए कलाकारों का जमघट का, उतने ही चुनिन्दा श्रोता जमघट। सुलेमान जुमा अपने नगारें पर एक ताल प्रस्तुत कर रहे थे तब पुरा समुदाय आनन्द–विभोर हो रहा था। तालियों की गड़गड़ाहट जो मानों थमने का नाम ही नहीं लेती थी। इतने में इस कार्यक्रम के प्रमुख अतिथि की ओर से दुबारा बजाने का अनुरोध किया जाता था। यह अनुरोध करने वाले थे विश्वविख्यात वायलिन'–वादक यहुदी मेन्युहिन। एक ऊँचा कलाकार ही अन्य ऊँचे कलाकार की कद्र कर सकता है। रत्नों का पारखी जौहारी होता है। यहुदी मेन्युहिन जैसे कलाकार का यह अनुरोध जहाँ कला की सार्वदेशिकता की घोषणा करता है, वहाँ दूसरी ओर सुलेमान जुमा की कला–गरिमा स्थापित करता है। नगारे को राष्ट्रीय धरातल पर उठाने का श्रय श्री जुमा को जाता है। पहले–पहल सन् 1968 ई. सन् में आकाशवाणी द्वारा संगीत के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में इसे प्रस्तुत किया गया। भारतीय संगीत जगत के सुख्यात वादकों यथा विस्मिल्लाह खाँ और गजाननराव जोशी जैसों के साथ वे संगीत कर चुके थे। वे सक्षम लोक कलाकार थे। कच्छ की पवित्र–पावन भूमि पर स्वर्गीय सुलेमान जुमा साहेब अपने नगारे की आवाज गुजरात के कच्छ प्रदेश तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि पूरी दुनिया में उनके 'नगाड़े की आवाज' की बुलन्दी उन्हें आकाश चूमने के लिए बिबश कर दिया और जुमा साहेब अपनी कला–कौशल का डंका ही बजा दिया।

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Book Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- International Scientific Journal Consortium
- OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- EBSCO
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database
- Directory Of Research Journal Indexing

Golden Research Thoughts
258/34 Raviwar Peth Solapur-413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com
Website : www.aygrt.isrj.net